International Journal of Advanced Research in Engineering Technology & Science ISSN: 2349-2819
Impact Factor: 7.10
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal)
Email: editor@ijarets.org Volume-11 Issue-9 September-2024 www.ijarets.org

मौर्य काल में मानवीय सामाजिक व्यवस्था का एक ऐतिहासिक अध्ययन

Shakir Husain (Assistant Professor)

History Department

DR B.R Ambedkar Janamshatabdi P.G College Dhansari Aligarh

सारांश

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अपना जीवन समाज के अन्तर्गत ही व्यतीत करता है और आजीवन समाज से जुड़ा रहता है। व्यक्ति का जन्म, पालन पोषण, शिक्षा, जीवन यापन सभी कुछ समाज में ही होता है। इस तरह मनुष्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मानव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में समाज का स्वरूप अनिश्चित एवं अविकसित था धीरे धीरे लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते गये होंगे और सामाजिक सम्बन्ध निर्मित होते गये। जिसके फलस्वरूप समाज का निर्माण हुआ। यह भी कहा जा सकता है कि लोगों की एक साथ रहने की प्रवृत्ति एवं जीवन को व्यवस्थित रूप देने की इच्छा के परिणामस्वरूप समाज का निर्माण हुआ।[1] मौर्य काल अनेक वर्णों और समूहों में बंटा हुआ था इनके सामाजिक आचार विचार, रहन सहन और व्यवहार भी एक दूसरे से पृथक थें कालान्तर में इसी सामाजिक विभाजन के कारण अनेक सामाजिक संस्थाएं बनी जो मनुष्य के सामाजिक जीवन को उद्घाटित करने में प्रेरक तत्व बनी। धीरे धीरे समाज के विविध पक्षों से सम्बन्धित सामाजिक व्यवस्थाओं का गठन हुआ। इन व्यवस्थाओं ने समाज को पूर्णता प्रदान की और विकास की ओर अग्रसर किया। समाज को पूर्णता प्रदान करने वाली इन्हीं व्यवस्थाओं में वर्ण व्यवस्था भी थी, इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप स्थान मिलता था। अपनी प्राकृतिक प्रवृत्ति और प्रतिभा के अनुरूप सम्पूर्ण मानव समाज चार वर्गों में विभक्त था।[2]इस व्यवस्था के पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम द्वारा भारतीय समाज का वर्णों में विभाजन किया गया। यह वर्ण विभाजन व्यक्ति के उसके स्वाभाविक गुणों के आधार था। समाज का यह वर्णगत विभाजन तत्कालीन सामाजिक जीवन का आधार थां जिससे प्रेरित होकर प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए निर्धारित कर्तव्यों को करते हुए इस सामाजिक व्यवस्था का पालन करता था।

मुख्य शब्द जाति प्रथा, कुटुम्ब व्यवसाय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि।

प्रस्तावना, व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही दृष्टि से यह उत्तम था, क्योंकि इससे न केवल व्यक्ति का विकास होता था बल्कि साथ ही साथ परिवार और समाज का भी विकास होता था इसके द्वारा समाज में एक स्वस्थ वातावरण उत्पन्न होता था तथा संघर्ष और प्रतिस्पर्द्धा की भावना समाप्त हो जाती थी। निश्चय ही समुदाय, समाज और देश के निर्माण तथा अभ्युत्थान में वर्ण व्यवस्था का योगदान अत्यन्त गरिमामय रहा है।[1] वर्ण शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'वृञ् वरणेः अथवा 'वृ' धातु से हुई है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'चुनना' या 'वरण करना' होता है। इस प्रकार 'वर्ण' से तात्पर्य किसी विशेष वृत्ति या व्यवसाय के चयन से किया जाता है। ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग 'रंग' अथवा 'प्रकाश' के अर्थ में हुआ है। कहीं कहीं वर्ण शब्द सामाजिक वर्ग की ओर इंगित करता है।[2] भारतीय समाज में जाति प्रथा का

विकास सदियों में हुआ तथा इसके विकास में विभिन्न परिस्थितियों और घटनाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। वैदिक और परवर्ती साहित्य से जाति प्रथा के प्रसार के विषय में जो जानकारी मिलती है। उससे स्पष्ट होता है कि जाति प्रथा के उदय में अनेक परिस्थितियाँ कारण के रूप में विद्यमान थी, इन विभिन्न परिस्थितियों के संयोग से ही विविध जातियों का जन्म हुआ। वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भिक आधार कर्म था किन्तु आगे चलकर वर्ण कठोर होकर विभिन्न जातियों में बदल गये तथा जाति का आधार विशुद्ध रूप से जन्म हो गया।[3]

जाति शब्द 'जन' से बना है। जिसका अर्थ होता है जन्म लेना। अंग्रेजी में जाति के लिए 'कास्ट' शब्द मिलता है। यह अंग्रेजी का कास्ट शब्द पुर्तगाली शब्द 'काष्टा' से बना है जिसका अर्थ नस्ल, प्रजाति और जन्म होता है। लैटिन भाषा के शब्द 'कास्टस' से भी कास्ट की उत्पत्ति बतायी जाती है। जाति व्यवस्था का सम्बन्ध जन्म आधारित व्यवस्था से माना जा सकता है। यह वर्गगत ढॉचे पर आधारित एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें आबद्धता भी है और गतिशीलता भी है। भारतीय जाति प्रथा के लिए कहा गया है कि यह कुटुम्ब या कुटुम्बों के समूह का समन्वित रूप है।[4] पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम भारतीय साहित्य के कुछ ग्रन्थों मे जाति शब्द का उल्लेख जन समुदाय या जनसमूह के लिए हुआ है। जाति शब्द का सबसे पहली बार उल्लेख 'कृष्ण जाति' के अर्थ में यास्क के निरूक्त में मिलता है। इसी प्रकार वृहदारण्यक उपनिषद में वैश्य के लिए जाति शब्द का प्रयोग किया गया है। पाणिनी ने भी शब्दोत्पत्ति की व्याख्या करते हुए जाति शब्द का उल्लेख किया है। पतंजलि ने अपने ग्रन्थ महाभाष्य में 'जाति' को जन्म से जोड़कर इसका उल्लेख किया है। अष्टाध्यायी में 'वर्ण' शब्द के साथ 'जाति' शब्द का भी उल्लेख उसके पर्यायवाची के रूप में मिलता है जो निश्चय ही वर्ण के स्थान पर प्रयुक्त है। कात्यायन श्रौतसूत्र में जाति शब्द का प्रयोग परिवार के अभिप्राय में किया गया है।[5] विभिन्न व्यवसायों या पेशों को भी जाति प्रथा के उद्‌भव का प्रधान कारण माना गया। समाज में बिखरी हुई अनेकानेक जातियाँ अपने व्यवसाय के कारण ही एक दूसरे से पृथक दिखाई देती है। पेशों की उच्चता और निम्नता से जाति की उच्चता और निम्नता मानी जाने लगी। जाति का प्रधान लक्षण भेदभाव पूर्ण ऊँच नीच की भावना से ही पैदा हुआ। जाति प्रथा के विकास में प्रजातीय तत्व का भी विशेष महत्व था। रिजले के अनुसार जाति की उत्पत्ति प्रजातीय भावना और अनुलोम विवाह की प्रथा से हुई। इण्डो आर्यन प्रजाति के लोग जब भारत आये तो उन्होंने अपने को यहाँ के निवासियों से उच्च और श्रेष्ठ माना। उन्होंने यहाँ की स्त्रियों से अनुलोम विवाह भी प्रारम्भ किये जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न जातियाँ उत्पन्न हुई। यह जातियाँ प्रजातीय और सांस्कृतिक भिन्नताओं पर आधारित थी।कृषि, पशुपालन और व्यापार आर्यों के प्रधान कर्म थे, किन्तु उनके विस्तार के साथ साथ अनेक उद्योग धन्धों का भी विकास हुआ। इन उद्योग धन्धों में लगे रहने के कारण विभिन्न वर्गों का भी उदय हुआ इनमें कुछ ऐसे व्यवसाय वाले थे जो उच्च होते और कुछ निम्न उच्च व्यवसाय करने वाले वैश्य वर्ग के अन्तर्गत हो गए तथा निम्न पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम व्यवसायों का चयन करने वाले निम्न श्रेणी के अन्तर्गत हो गये, इसका परिणाम यह हुआ कि निम्न व्यवसाय अपनाने वालों को अस्पृश्य माना जाने लगा।[1] वैदिक युग में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चार श्रेणियों के अतिरिक्त अनेक व्यवसाय परक जातियाँ उत्पन्न हो चुकी थी, उनमें चर्मग्न, चर्मकार, कापीर लोहार, तष्टा, बढ़ई वप्ता, नापित, भिषक, वैद्य आदि प्रमुख जातियाँ थीं। ऋग्वेद में एक स्थान पर 'वाय' शब्द का उल्लेख जुलाहे के अर्थ में किया गया है।[6] और चमड़े का काम करने वाले व्यावसायिक वर्ग को 'चर्मग्न' अथवा 'चर्मकार' कहा जाता था। ये विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक समूह विभिन्न सामाजिक वर्ग के रूप में विकसित हुए जिन्हें प्राचीन

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शूद्र के अन्तर्गत ग्रहण कर लिया गया। ऋग्वैदिक कालीन समाज में विभिन्न प्रकार के व्यवसायी और शिल्पी प्रकाश में आ चुके थे। यह व्यवसायिक और शिल्पी वर्ग कालान्तर में पृथक सामाजिक इकाई के रूप में आर्थिक जीवन को वृद्धि प्रदान कर रहे थे।[7]मौर्य काल तक आते आते नये नये उद्योग धन्धों और शिल्पगत वर्गों का गठन हुआ। यह परम्परा कालान्तर में और अधिक विकसित हुई तथा समाज में रथकार, सूत, कर्मार, रज्जुसर्ग, मणिकार, सुराकार, विदलकार, कंटककार, निषाद, कुलाल, श्वनि श्यान रक्षक आदि अनेक व्यवसाय प्रधान वर्गों का उदय हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण में निषाद का उल्लेख पाप कर्मी के रूप में मिलता है। इन विभिन्न व्यवसायों और शिल्पों का विकास इस काल के सामाजिक उत्कर्ष का परिचय देता है। लोहार, रथकार और बढ़ई अपने विशेष कार्यों से तत्कालीन समाज में अपने को स्थापित करने लगे थे।[8] बढ़ई विभिन्न प्रकार के लकड़ी का कार्य करता था, रथकार रथों का निर्माण करता था और लोहार लोहे की विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करते थे। इन तीनों में रथकार के लिए तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'अग्निहोत्र' शब्द मिलता है जो उसकी उच्च स्थिति का द्योतक है। इसी प्रकार अथर्ववेद में कर्मार अथवा लोहार को 'मनीषी शिल्पकार' कहा गया है तथा विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का निर्माण करने वाले बुनकरों के लिए 'वाय' शब्द का प्रयोग किया है।[9] सूती कपड़ों के साथ ऊनी वस्त्र भी समाज में प्रचलित थे इससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि उस युग में ऐसे तन्तुवाय थे जो सूती ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के कपड़े बनाते थे। मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुलाल भी समाज पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम में विशेष स्थान रखते थे। जो घड़े, तश्तरियाँ, प्याले बनाकर समाज में अपना जीवन यापन करते थे। आगे चलकर विभिन्न व्यवसायों और शिल्पों में लगे रहने वाले वर्ण अलग अलग जातियों के रूप में विकसित हुए।[1]बौद्ध युग में भी तन्तुवाय, कुम्मार, कुम्भकार, तच्चक बढ़ई जैसी शिल्प प्रधान जातियाँ समाज में दिखायी देती हैं। इस प्रकार के शिल्प और व्यवसाय क्रमशः पैतृक होते गये जिससे अनेक जातियाँ बनी यह व्यवसाय परक और शिल्प परक जातियाँ अलग अलग ग्रामों में निवास करने लगी। जातक ग्रन्थों में कम्मारग्राम, बड्ढकि ग्राम और कुम्भकार ग्राम का विवरण मिलता है।[10] कौटिल्य ने पेशे के आधार पर जातियों की संख्या छः बतायी है। जिनमें दार्शनिक, व्यापारी, योद्धा, शिकारी, पर्यवेक्षक और परामर्शदाता प्रमुख थे। समाज में कुछ ऐसी जातियाँ भी विकसित होने लगी थी जो भ्रमण और यायावरी जीवन व्यतीत करती थी, इनका प्रमुख पेशा लोगों का मनोरंजन करना था।

महाभारत तथा उपनिषदों से ज्ञात होता है कि इस समय समाज में चारों वर्णों के अतिरिक्त अनेकानेक जातियाँ थी जिनकी उत्पत्ति अनुलोम और प्रतिलोम जैसे अर्न्तजातीय विवाहों से हुई थी। ऐसी विभिन्न जातियाँ कुछ लोगों द्वारा समाज में सवर्णता या अवर्णता का ध्यान रखे बिना विवाह सम्बन्ध स्थापित करने से बनी। सामाजिक भेदों और प्रजातीय अन्तरता के कारण इन जातियों की संख्या लगातार बढ़ती गयी और इनका एक बड़ा वर्ग समाज में उत्पन्न हो गया था। ''धर्मसूत्रों में भी ऐसी विभिन्न जातियों का उल्लेख मिलता है जो अनुलोम प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न हुई थी। वृहस्पति ने तो अनुलोम और प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाहों को वर्णसंकरता का कारण बताया है। वर्ण संकर जातियों का भी आपस में मिश्रण हुआ इससे अनेक संताने उत्पन्न हुई जो विभिन्न निम्न जातियों के अन्तर्गत ग्रहण कर ली गई। इस प्रकार भारतीय समाज में जातियों और उपजातियों का एक बड़ा समुदाय हो गया। बौधायन ने ब्राह्मण पुरूष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न सन्तान को अम्बष्ठ कहा। इनका प्रधान कर्म चिकित्सा करना बताया गया है। शूद्र पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न सन्तान आयोगव कहलाती थी। कुछ अन्य विद्वानों ने इसे वैश्य पुरुष और क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न

बताया। इनका प्रमुख कार्य लकड़ी की वस्तुएं बनाना था। ब्राह्मण पुरुष और वैश्य या शूद्र से निषाद की उत्पत्ति पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम मानी जाती है। यह जाति नाविक का कार्य करती थी। महाभारत में इस जाति के उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से बताया गया है जिनका कार्य जंगलों में आखेट करना और मछली पकड़ना था। 'मागध' जाति की उत्पत्ति वैश्य पुरूष व ब्राह्मण या क्षत्रिय स्त्री से हुई थी। इनका प्रधान कर्म स्थल मार्ग से व्यापार करना था। वैश्य पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न रथकार को वैदिक युग के समाज में राजकीय आदर प्राप्त था। युद्ध, आखेट, भ्रमण आदि के अवसर पर काम आने वाले रथ का निर्माण करना इस जाति का मुख्य कार्य था। बौधायन के अनुसार वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न सन्तान को वैदेहक कहा जाता है। महाभारत में भी इसी प्रकार का विवरण मिलता है। इसका प्रमुख कार्य अन्तःपुर की रक्षा करना होता था। सूत्रकारों ने सूत जाति की उत्पत्ति क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से माना है। इसका प्रमुख कार्य सारथी का था। वैदेहक पुरूष और अम्बष्ठ स्त्री के विवाह से वेण नामक जाति की उत्पत्ति हुई, जिसका प्रमुख धन्धा बॉस या लकड़ी का सामान बनाना तथा कॉसे या मुरज आदि बजाना था। ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से पारशव नामक जाति का उदय हुआ। निषाद पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न सन्तान को पौल्कस या पुक्कस के नाम से पुकारा गया। इस प्रजाति का प्रधान कर्म बिल में रहने वाले जीवों को मारना तथा मन्दिरों और प्रसादों में पड़े मुरझाये फूलों को हटाना था। शूद्र पुरुष और क्षत्रिय स्त्री के संभोग से उत्पन्न जाति को बौधायन ने 'क्षत्ता' कहा। इसी प्रकार अभिधान चिन्तामणि में ब्राह्मण पुरुष और उग्र स्त्री से उत्पन्न सन्तान को आवृत्त कहा गया। अभीर जाति की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष और अम्बष्ठ स्त्री से मानी गई है। नदी के किनारे रहने वाली धीवर नामक जाति वैश्य पुरुष और क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न मानी गई है। शूद्र पुरुष और निषाद स्त्री तथा क्षत्ता पुरुष और उग्र स्त्री की सन्तान को क्रमशः कुक्कुटक और श्वपाक माना गया। शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की सन्तान को 'चाण्डाल' कहा गया। धर्मसूत्रों में इन्हें अत्यधिक हीन और महापातकी जाति के अन्तर्गत रखा गया। मैत्रेयक जाति का उद्भव वैदेह पुरुष और आयोगव स्त्री से भार्गव, कैवर्त, केवट या मल्लाह का जन्म निषाद पुरुष व आयोगव स्त्री से कारावर (चर्मकार) का जन्म निषाद पुरुष और वैदेह पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम स्त्री से वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से म्लेच्छ, क्षत्रिय पुरूष और शूद्रा से शूलिक, वैश्य और शूद्रा से पुलिन्द की उत्पत्ति स्वीकार की गई है। बाँस की टोकरी आदि बनाने वाले डोम, वस्त्र धोने वाला रजक धोबी तन्तुवाय बुनकर, लकड़ी के काम करने वाला तक्षा, कुलाल कुम्हार, कर्मार लोहार, सोने के आभूषण बनाने वाला स्वर्णकार, मदिरा बनाने वाला सुराकार आदि कई वर्गों का निर्माण अति प्राचीनकाल में ही हो गया था। इस प्रकार मिश्रित सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाले जाति समूहों का विस्तार हो गया और उनमें अनेकानेक व्यावसायिक समूह भी सम्मिलित हो गये। ऋग्वेद में आर्यों ने अपने विपक्षी अनार्यों के लिए अनेक जगहों पर निरादर सूचक शब्दों का प्रयोग किया है। आर्यों ने अनार्यों को हमेशा तिरस्कार की दृष्टि से देखा किन्तु पूरे वैदिक साहित्य में कहीं भी अन्त्यज या अस्पृश्य जैसे शब्दों का उल्लेख नहीं मिलता। इस काल के ब्राह्मण ग्रन्थों में इनके स्पर्श से बचने के नियम बताये गये और कहा गया कि ऐसे गाय से दूध नहीं निकालना चाहिए जिसका दूध शूद्र की अग्निहोत्र में प्रयुक्त होता हो। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि यज्ञ के लिए अभिषिक्त व्यक्ति को शूद्र से बात नहीं करनी चाहिए तथा 'प्रवर्ग्य' धार्मिक कार्य करने वाले व्यक्ति को स्त्री और शूद्र दोनों के स्पर्श से बचना चाहिए। शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मणों के अनुसार राजसूय यज्ञ के समय अभिसिंचन में शूद्र को भाग लेने का अधिकार नहीं है। सूत्रकारों का कहना था कि यदि कोई विद्यार्थी सफलता प्राप्त करना चाहता है तो उसे शूद्रों

और स्त्रियों के साथ बात नहीं करनी चाहिए, स्नातक विद्यार्थी को तो शूद्र और स्त्रियों के साथ यात्रा भी नहीं करनी चाहिए। कुछ अन्य सूत्रकारों का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति यज्ञ के लिए अभिषिक्त है तो उसे शूद्रों के सम्पर्क से बचना चाहिए और बातचीत तक नहीं करना चाहिए। इस काल में यदि कोई व्यक्ति अपने निर्धारित धार्मिक कार्यों की उपेक्षा करता था तो उसे पतित माना जाता था। ऐसे ब्राह्मणों, क्षत्रियों, तथा वैश्यों के परिवारों को भी पतित माना जाता था। जिसमें पिछले तीन पीढ़ी से उपनयन संस्कार न हुआ हो। ऐसे पतित परिवार को गांव या शहर से बाहर रहना पड़ता था और इनके पारिवारिक सदस्यों को देखना अशुभ माना जाता था। पाणिनी ने शूद्रों को 'निरवसित' और 'अनिरवसित' दो वर्गों में रखा है। निरवसित शूद्रों को अस्पृश्य माना जाता था इन्होंने चाण्डालों और शूद्रों की गणना निरवसित शूद्रों में की हैं। निरवसित शूद्र वे होते थे जो निश्चय ही गन्दगी से रहते थे। अनिरवसित शूद्र को अस्पृश्य नहीं समझा जाता था। गौतम का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को चाण्डाल या जाति से बहिष्कृत व्यक्ति का स्पर्श हो जाने पर स्नान करना चाहिए। आपस्तंब का कहना है कि ब्राह्मणों, उग्रों और निषादों को वैदिक साहित्य नहीं पढ़ना चाहिए। ब्राह्मण, उग्र और निषाद पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम सभी आदिम जातियां घृणित कार्य करती थी। चाण्डाल के देखने और छूने से प्रत्येक व्यक्ति दूषित हो जाते थे। कुछ अन्य सूत्र ग्रन्थों में मिलता है कि चाण्डाल के स्पर्श के दोष से मुक्त होने के लिए सवस्त्र स्नान करना चाहिए, चांडालों के विषय में इसी प्रकार के मत अन्य ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

निष्कर्ष

एक जातक कथा के अनुसार कोई श्रेष्ठि कन्या भोजन ला रही थी, उस भोजन को किसी शूद्र में देख लिया इसलिए उस श्रेष्ठी की कन्या ने भोजन को फेंक दिया। यह चाण्डालों या अन्त्यजों की स्थिति एवं उनके प्रति किये जाने वाले सामाजिक व्यवहार को व्यक्त करता। कौटिल्य ने केवल चांडाल को अस्पृश्य कहा है उनका कहना था कि यदि चाण्डाल किसी आर्य स्त्री का स्पर्श कर ले तो राजा को चाहिए की वह शूद्र पर एक सौ पण का जुर्माना लगाये। कौटिल्य वेण, निषाद, रथकार और पुक्कस की गणना अस्पृश्यों में नहीं करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस काल में रथकारों, वेणों, पुक्कसों पूर्व गुप्तकालीन सामाजिक आयाम और निषादों की स्थिति थोड़ी अच्छी थी। तथा इनका चाण्डालों, अंत्यजों के साथ ठहरना भी उचित नहीं माना। श्राद्ध के समय चाण्डाल ब्राह्मणों को नहीं देख सकते थे तथा धार्मिक क्रिया करने वाला व्यक्ति उनसे कोई सम्पर्क न रखें। ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य काल के प्रारम्भ में अस्पृश्यता की भावना समाज में सामान्य थी, किन्तु अपने पूर्ण विकसित रूप में वह मौर्य काल के अन्त में प्रकट हुई थीं। अस्पृश्यों के लिए व्यवसाय करने पर भी प्रतिबन्ध था। बहुत से ऐसे व्यवसाय थे जिसे वे नहीं कर सकते हैं। यह प्रायः भूमिहीन श्रमिक होते थे। सामाजिक क्षेत्रों में वे बाल भी नहीं बनवा सकते थे तथा उच्च जातियों के व्यक्तियों के आने पर उनका कर्तव्य था कि वह खड़े होकर उनका स्वागत करें। धार्मिक दृष्टि से भी उन्हें कुछ स्थानों पर जाना निषिद्ध था। वे रात के समय शहर या गांव में घूम नहीं सकते थे दिन के समय भी वह राजा द्वारा निर्धारित वस्त्र पहनकर ही बाहर आ सकते थे ऐसी ही अमानवीय सामाजिक प्रथा थी

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, गुप्त एवं समकालीन राजवंश, श्रीराम, इलाहाबाद, पृ0 34

2 प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन : भारती राज, इलाहाबाद, . पृ0 230

3 प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग : विद्यालंकार, सत्यकेतु, मसूरी, पृ0 63 .

4 पौराणिक धर्म एवं समाज राय, सिद्धेश्वरी नारायण, इलाहाबाद, पृ0 78

5 पूर्वकालीन भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था : शर्मा, रामशरण, दिल्ली, पृ0 56

6 पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐंशेण्ट इंडिया : रायचौधरी, ह. च., कलकत्ता, पृ0 59 .

7 मत्स्य पुराण—ए स्टडी : अग्रवाल, वासुदेवशरण, काशीराज—ट्रस्ट प्रकाशन, वाराणसी।

लाइन इन दी गुप्ता एज : सैलेतोर, आर.एन., बम्बई, पृ0 22

8 वाकाटक राजवंश का इतिहास और अभिलेख : मिराशी, वा0वि0, वाराणसी, . पृ0 56

9 विश्व—सभ्यता का इतिहास : राय, उदय नारायण इलाहाबाद पृ0 58

10 सम इंडोलॉजिकल स्टडीज : नेगी, जे.एस., जिल्द 1, इलाहाबाद, . पृ0 32